आदमी और आदमी के बीच

(1978 से 1996 तक की कविताएँ)

अशोक पाठक



विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

ISBN 81 7124 180-8

मूल्य अस्सी रुपया

प्रथम सस्करण 1996

प्रकाशक विश्वविद्यालय प्रकाशन
विशालाक्षी भवन चौक वाराणसी

लेजर टाइपसेटर ज्योति प्रिन्टिङ्ग एजेन्सी
क० 47/208 विश्वेश्वरगज वाराणसी

मुद्रक वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक वाराणसी

आवरण डॉ० डी०पी० बटव्याल

Aadami Aur Aadami Ke Beech
(Collection of Poems) by Ashok Pathak

प्रो० चन्द्रबली सिह के लिए

विषय-क्रम

पृष्ठ

आदमी के आसपास

दिनभर बोझिल क्षणो के बीच
उठता बैठता हूँ
लोगो के चेहरे पर तिरती विवर्णता
कमरे मे धूल की एक परत सी
बिछ जाती है
मेरा वजूद अपनी बची खुची ऊर्जा से
कमरे की झाड पोछ मे लग जाता है
मैं मन मे उपजती सवेदना के तारो पर झूलता हुआ
किसी ऐसे सहज और आत्मीय ससार को
धरती पर बसाने के लिए तडपता रहता हूँ
जहाँ गाढे वक्त म साथ देने वाले
खून की धार देखकर
गुफा द्वार पर भारी शिला रखकर पलायित न हो जाये

कभी कभी ऐसे भी मौके आते हैं
जब बहुत तलाशने पर भी
अपनी छटपटाहट के वजन का
एक भी शब्द नहीं मिलता
लगता है भाषा के गाँव मे
सोता पड गया है

ऐसे मे मैं अपनी आहत सवेदना
के प्रवाह मे दूर तक बहता चला जाता हूँ
जैसे पट्टा उतर जाने के बाद भी
मशीन का चक्का देर तक नाचता रहता है

आकाश मेरे काफी करीब आकर
कान मे फुसफुसाता है
अब सूरज भी कहाँ पहले जैसा सूरज रह गया है
और चाँद भी कहाँ पहले जैसा चाँद

अपनी नपी तुली जिन्दगी को
लयबद्ध करने के लिए
मैं उस धुन को पकडना चाहता हूँ
जो मेरी साँसो मे बजती है
उस राग को मन मे उतारना चहता हूँ
जिसकी तान बुरे से बुरे दिनो मे भी मुझे
अपने आसपास सुनायी देती है।

198

धूप कितनी देर

अब मैं उस सिहरन को पचा नहीं पाता
जिसकी गुजलक म मैं घिर गया हूँ
आज भी मेरे आसपास वही घास का मैदान है
कुछ किताबे हैं धूप है
ठडी हवा के झोंको से बुझी धूप
मैं दिमाग पर जोर देकर
कुछ ऐसी यादो की परत हटा रहा हूँ
जिनकी छाया मे जिन्दगी की भागदौड थी ठहराव था
उधेडबुन भी लयबद्ध थी उलझनो मे भी क्रम था

अब यह मैं कहाँ पहुँच गया हूँ
कि थम राग सा मरा व्यक्तित्व है
उडा उडा सा चेहरा है फॉक फॉक सी जिन्दगी है
और बिखरा बिखरा सा मैं हूँ

जिस ओर की खिडकी खोलता हूँ
उस ओर का सिवान आहत है

पता नहीं आजकल सूरज को भी क्या हो गया है
कि एक अन्धी धूप भी मेरे ऑगन मे नहीं उतरती
फिर भी मुझे पहले की तरह
इस इलाके का हर टपरा जॉचते चलना है
कि किस जगह पर धूप
कितनी देर तक ठहरती है

भला मैं उस भाषा की हुलिया नोट करके
क्या करूँगा
जिसके टुच्चे शब्द भी
कविता के हाथ का छुआ पानी नहीं पीते

मुझे अपनी उपलब्धियो की तालिका मे
उन तिथियो का उल्लेख करके
खुशी मे फूलने का भ्रम नहीं पालना है
जिनमे कुछ ऐसा रचा गया
जो हमारी चलती फिरती जिन्दगी के साक्षी हैं
पर मैं तिथियों से इस हद तक परहेज नहीं करता
कि कमरे मे कैलेण्डर तक न टॉगू
लेकिन उन विज्ञापनो को कहाँ खदेड दूँ
जो कैलेण्डर के साथ कमरे मे घुस आते हैं
और साल भर दीवार पर फडफडाते हैं।

19

टुकड़ों में बँटी जिन्दगी

टुकडो मे बँटी है जिन्दगी
हर टुकडे का अपना दर्द है
हर एक टुकडे पर कुछ न कुछ दर्ज है
इस तरह बिखर रहे हैं सब एक एक कर
कि उनको सँजो पाना है मुश्किल

कोई घर गृहस्थी के सेतु पर तनी रेलिग तोडकर
भूले बिसरे सम्बन्धो की बाढ मे बह गया
एक बहनो की शादी के हडबोग
और बिदाई की पीडा मे गुम हो गया
तो एक सुखी जिन्दगी की तलाश मे
कठोर यथार्थ के नीचे कुचल गया

मैं उनकी बची खुची यादे टुकडे टुकडे करके
मुट्ठी मे लिए सोच रहा हूँ
कि इन्हे खिडकी से नीचे गिरा दूँ
या एक बार फिर जोडकर देखूँ
कि किस टुकडे पर लिखा शब्द सही सलामत है
कौन दो टुकडो मे बँट गया है
किसका एक अक्षर इस टुकडे पर
और मात्रा दूसरे टुकडे पर चली गयी है

इसी उधेड बुन मे पडा रहता हूँ
कि ध्यान जोरो से हो रही बारिश की ओर
खिच जाता है
कागज क टुकडे पानी क प्रवाह म छोड देता हूँ
इधर उधर बहते बहते टुकडे
आपस मे जुडने लगते है
उनको जुडते और जुडकर बहते देखना
अच्छा लगता है।

1994

फूलों की गन्ध तक

इस परिवेश से अपने को बाहर खींच कर
किस तरह मैं एकान्त मे जाकर बैठ जाता हूँ
अपने भारी मन को बहलाने

इस तरह कितने दिन कटेगे
जबकि हम एक ऐसे सख्त दौर से गुजर रहे हैं
जहॉ किसी को
दूसरे की सुविधा पर
एक नजर डालने की फुरसत नहीं

यहॉ चीख और कराह का
झापस घिर आने पर भी
किसी खपरैल से
सहानुभूति की ओरी नहीं चूती

सवेदना के नाम पर सबकी झोली मे
कुछ विषैले महावरे हैं जिनका जिस्म सीझ गया है
कुछ शब्द हैं जिनके चेहरे
पूरी सदी की कडुआहट पीकर तमतमाये हुए हैं
एक भाषा है जिसकी ऑखो मे खून उतर आया है
और इन्हीं के दम पर हैं कुछ कविताऍ
जो आम आदमी से जुडने की कोशिशे कर रही हैं

एक अजीब नस्ल की बीमार फसल काटकर
खेत मे छोड दी गयी है
और हमे उन बेजुबान दिशाओ तक
अपनी बात ले जानी है

जिनकी आँखों का पानी मर गया है
जिनकी जिन्दगी खण्डहरों पर रेंगती डोलती हवा-सी
मनहूस और अनमनी है
जिनकी भूख कँटीले तारो की बाड लाँघ जाती है
जिन्हें अपनी सँझवाती का दिया लेसकर
वह बाती उकसानी पडती है
जिसकी ऐंठन उतर गयी है
जहाँ हर किसी के सिर पर
ऐसा माहोल तन गया है
जिसमे वेश बदलकर
एक ही असगुन डोलता है सारी रात

अब भला हम अपनी खुराक की तलाश मे
उन फूलो की गन्ध तक कैसे पहुँचेगे
जो मौसम पर उँगली न उठाकर
अपनी महक पूरे सिवान मे उँडेल देते है

इतनी उकठ गयी है हमारे अस्तित्व की बागबानी
कि कोई भी माली दो दिन से ज्यादा नहीं टिकता
एक भी चरागाह ऐसा नहीं बचा है
जहाँ गाये बेखौफ चर सके
ऐसे मे हम उन समारोहों का पडाल
कब तक सजाये
जहाँ धूप से बचने के लिए हमे
अपनी ही परछाईं का पीछा करना पडे।

1979

फिर भी

जब दूर तक फैले रेतीले भूखण्ड से
पंक्तिबद्ध चले जा रहे ऊँटों पर
अचानक किसी की नजर ठहर जाय

जब कदम कदम पर उभरी
चट्टानों से टकराकर उछलती
वेगवती पहाडी नदी को
कोई एकटक निहारता रह जाय

जब इतिहास के झरोखे से आते
हवा के झोंके मे
वर्तमान की विसंगतियाँ
और भविष्य की चिन्ताएँ भर जॉय

जब दिनभर की भाग दौड और थकान के बावजूद
कुछ हासिल न हो सके
और मन की बात मन मे ही रह जाय

जब आज का काम कल के मत्थे मढकर
कल के गीलेपन को
परसो की धूप मे सुखाने की विवशता
अपनी नियति बन जाय

तो और चाहे कुछ हो न हो
एक मंत्रमुग्धता एक आत्मविस्मृति
एक अवसाद एक तडप और एक विडम्बना
के कण तिरते होते हैं हमारे आसपास

जहाँ गति मे भी एक ठहराव
हलचल मे भी एक लयबद्धता
अनुभूति मे भी एक द्वन्द्व
पश्चात्ताप मे भी एक प्रेरणा
और विवशता मे भी एक दिशा होती है।

1991

धुआँ

कल तक जहाँ बैठता था
वहाँ से थोड़ा हट गया हूँ
अब वहाँ धुआँ भर गया है
यह धुआँ पड़ोस से ही आया है
पर मेरी उनसे बोलचाल नहीं है
नहीं तो मै धुएँ की इस बेखोफ आवारागर्दी पर
कुछ काबू पाता

यदि धुएँ की जगह पर राख भी होती
तो उससे बर्तन माँजा जा सकता था
पर इस धुएँ से जो बलात मेरे कमरे मे भर गया है
बर्तन भी कहाँ माँजा जायगा

हवा का रुख चाहे जिधर का हो
इस गली की ओर धुआँ तीर की तरह आता है
इस धुएँ से बचने के लिए
मैं जब भी कोई कदम उठाता हूँ
मेरा कोई न कोई हिस्सा
और धुआँ हो जाता है।

1983

उस राह पर

अब मैं काफी दूर से
उस राह पर एक नजर डाल लेता हूँ
जिस पर चलना कभी मेरी विवशता थी
अब भी जिस पर मेरे पाँवो की थकान
ठिठकन और उतावली के कितने अनुच्छेद
लिखे हुए पडे हैं
पर मुश्किल है उनमे से किसी
की हस्तलिपि पढ पाना
आर उनकी मदद से किसी सार्थक
मजिल तक पहुँच पाना

इस जीवन वृक्ष की एक भी टहनी ऐसी नहीं
जिसे नीचे झुकाकर मै
पूरे वृक्ष की आपबीती की पडताल करूँ
यहीं मेरी सुबह शाम होती थी
और मै जी भर उन सूत्रा को दुहराता था
जो अब एक भयानक सॉय सॉय का
हिस्सा बन चुके हैं
एक दम ताडती खामोशी फैल गयी है
मेरे और उनके बीच
यह सोचकर मेरी ऑखे नम हो जाती हैं
और मैं अपने मुरझाये मन के
आदिम सस्कारो का पता पूछने बैठ जाता हूँ
जैसे डाक ही पहुँचानी है मुझे उनके घर

अभी मैं उस राह पर गुजरे दिनो की पीड़ा
भुलाने की कोशिश कर ही रहा था
कि उखाड लिये गये है सारे पथ सकेतक
उन रास्तो के भी
जिनसे होकर मुझे आगे यात्रा करनी है
अब मुझे किसी भुलावे मे आये बिना
उन गुत्थियो की असलियत खोल देनी है
जो हमेशा मेरी राह मे रोडे अटकाती है
मेरे हरे भरे मन को चर जाती हैं।

1980

अगुआई का अनुबन्ध

कविता तुममे तो मेरे जीवन की
सारी करुणा ही तडपकर सिमट गयी है
तुम्हीं ने तो अक मे भरा है उस धुन को
जो उभरती तिरती होती है मेरे आसपास
ऐसे मे नीले आकाश सा धुला होता है
मेरे समर्पण का कोना कोना
जिसकी भास्वरता मे मैं
समय का निर्वाक प्रवाह झेलता रहता हूँ

कितना काटकर हर ओर से मैंने
अपने को धरा है इस उजास में
जहाँ शब्दो के दिये भावो की आरती मे
सार्थकता पाने के लिए
पास पास जलते है
काल के भीषण हलवाहे
तूने कितनी बाह जुताई की थी
उस मन स्थिति की
जिससे कविता के अँखुए फूट हैं

मेरे गोपनीय क्षणो की गुहा
पगली तुम्हारे नूपुरो की ध्वनि ने
किन कारुणिक सन्दर्भो का मचन किया है
कि मेरी झोली मे
एक फूटा दाना तक नहीं बचा
जिसे मैं डाल देता
किसी भूखी चिडिया के आगे

अब देर रात गये
मै किसके सकेनो की सील तोड़ूँगा
एक भावुक ध्वनि सुनते ही
किसकी नींद उचटकर
अपनी थकान को झुठलाने लगेगी
किसकी असगता का किवाड खुलते ही
मै बैठ जाऊँगा सिर से पॉव तक सहजता समेटे

कविता मेरी औकात की गगा
आखिर किसके दबाव मे आकर
तुमने मेरी अगुआई का अनुबन्ध किया था ?

1980

इतना ही कहा जा सकता है

समय के मटमैले प्रवाह से छीनकर
मैने अपने पास
एक मनचाही धरती बसा ली है
पर जब भी मैं किसी अहम मसले पर
अन्तिम निर्णय लेने के लिए उठता हूँ
तो मेरे हाथ मे लोटा डोर तो लगती है
पर पास के किसी कुएँ मे पानी नहीं दिखता
एक अदद आदमी के लिए
यह भी कितना ज्यादा है

काफी दिनो से जहाँ जहाँ उठता बैठता हूँ
सबको पता है
पर इधर किसी से मुलाकात नहीं हुई
नहीं तो यह सब उसे बताकर
कुछ हल्का हो लेता

तमाम घुमावदार रास्ता से गुजरते हुए
जब भी किसी परिचित घर की कुडी खटखटाता हूँ
तो कुडी की आवाज और दरवाजा खुलने तक
बीच मे फैली दूरी
मुझे हाशिये पर ढकेल देती है
पर बाहर निकले किसी भी चेहरे से
इतनी उम्मीद नहीं फूटती
कि मैं आँख मूँदकर
उसके हाथो मे रास थमा दूँ
कहीं किसी ओर से हवा का
एक भी एसा झोका नहीं आता
जिससे मुट्ठी भर भूसा और अनाज फरिया जाते

घृणा हिंसा और आतंक के इस चरमराते माहोल मे
कौन किस चौराहे पर बम रखकर चल देगा
कहा नहीं जा सकता
अपराध और नरसंहार के सारे कीर्तिमान ध्वस्त कर
और इस थकी सदी को चकमा देकर
कौन संसद मे कब पहुँच जायेगा
कहा नहीं जा सकता

लूटतंत्र और घोटालो के घण्टे घडियाल लिए
अण्डरवर्ल्ड राजनीति के मरघट पर
अललटप्पू मसखरो के गर्जन तर्जन मे
किस जाति और धर्म का भट्ठा कब बैठ जायेगा
कहा नहीं जा सकता

कहा जा सकता है तो सिर्फ इतना ही कि
इस बेगैरत जमाने मे
कविताएँ हाथ पर हाथ धरे
बैठी नहीं रह सकतीं।

1982

अहम्मन्यता

आज मैने उस शब्द की
गर्दन मरोड दी
जो वाक्य भी न बन पाया था
और अपने को किताब समझ बैठा।

1980

समय

समय घूमते पहिये का
वह हिस्सा है
जो जमीन पर होता है
और जिसे मालूम है कि
इक्के पर कितनी सवारियाँ लदी हैं।

1981

मेरे सपने

गरीबी ने मेरे पास
कुछ एक सपनो के सिवा
कुछ भी नहीं छोड़ा है
मैने इन सपनो को
तुम्हारे पॉव के नीचे बिछा दिया है
धीरे चलना
ये मेरे सपने हैं
जिन पर तुम चल रहे हो।

1981

न चाहते हुए भी

न चाहते हुए भी मुझे
उन कविताओ से गुजरना होता है
जिनमे मेरी परवाह करने वाला
एक भी शब्द नहीं होता

न चाहते हुए भी मुझे
उन्हीं शब्दो की पूँछ मरोडनी होती है
जो एक गाल पर चॉटा खाकर
दूसरा गाल आगे बढा देते हैं
और बात बेबात अनशन पर बैठ जाते हैं

न चाहते हुए भी मुझे
उसी भाषा से जद्दोजहद करनी होती है
जो कबड्डी खेलते लडके की तरह
सॉस टूटने से पहले पाल्हा छूने के प्रयास मे
अपना छटपटाता हाथ आगे फेकती है
कभी मर जाती है कभी उबर जाती है।

1981

इस बरसात में

कहाँ से सुबह सुबह चढ आये हैं
काले कजरारे बादल मेरे गॉव के आकाश मे
कि दिनभर छँटने का नाम नहीं लेते
मेरा घर-ऑगन भीगता है

अपनी-अपनी दुनिया मे सब भीगते हैं
किसी बात पर चिढकर सो गये बच्चे
सड़ा आटा बेचकर पडोस का दुकानदार
जली कटी बाते सुनाकर मॉ
घर के बाहर छूट गयी झिलगा खाट
पगहा न तोड सकने की वजह से मरियल गाय
और काफी दूर तक एक गुमटी भी न दीखने से
बेतहाशा भाग रहा साइकिल सवार

रह रह कर बिजली सी कौंध जाती हैं
हमारी लाचारियॉ
और उभर आता है घर के कोने कोने मे
अभावो का बेडोल ससार
हाल मे बॉधी गयी लाठ सी
धसक जाती है जिन्दगी
ओर बार बार हिल उठती हैं
घर की चूले
जहा फीस के दिन बच्चे झोले मे
झिडकियॉ लेकर निकलते हैं
किसी की कोई अहक पूरी नहीं होती
जहॉ हर किसी की उदासी दूसरे से
जौ भर ज्यादा ही दिखाई देती है

घर मे कनस्तरो की मौन चीख उठती रहती है
धागो और कपडो मे कहा सुनी होती रहती है

जिन्दा रहने के क्रम मे
सुख की घडी से
टुक बात करने से पहले
उम्र ढेर हो जाती है
रात के अन्धेरे मे छाजन और दीवारो से
बातचीत के दौरान
नींद भी सिरहाने से सरक जाती है

सूरज चढते ही लोग अपनी-अपनी तकलीफे
भीगे कपडो की तरह
धूप मे डाल आते हैं
और हमारे चेहरे पर उभरीं चिन्ता की रेखाएँ
मन के गह्वर मे उतर जाती हैं।

1979

उम्मीदों का आँचल

अब न जाने कैसा मन हो गया है
कि बाते जिन्हे सुनते सुनते
कभी मन नहीं भरता था
सुनने का जी नहीं करता
कहीं कुछ भी तो नहीं बदला है
न मेड पर उगी घास
किसी बहकावे मे आयी है
न कचहरी के अहाते म धँसे
धारदार ईंट के टुकडे
अपनी जगह से हटे हैं
खपरैल पर धूल की परत हर साल
उसी तरह जमती और धुलती रही हैं
आँखे इन्हे देखते देखते
इतना ऊब चुकी है
कि उधर कभी नहीं देखतीं
ठहराव क इस सिलसिले को मै किस जगह से लाँघूँ

जिनकी आँखो ने आजादी के
वहशियाना जुलूस को देखा है
वे भी सडक पर निकले हडतालियो के हगामे को देख क
ताज्जुब करते हैं कि आखिर ये लोग
आज तक दिल्ली क्यो नहीं पहुँचे ।
इनकी अपेक्षाएँ कैसे ढेर हो गयीं ।
लावारिस जिन्दगी ढोते इनके बच्चों का भविष्य
अरब क दलालो ने कैसे तुलवा लिया
आखिर अमरबेलि सी उमडती

इस भीड की महत्त्वाकाक्षा को
कैसे लकवा मार गया
कि कोई भॉप नहीं सका
टुकडो मे बँटती
इनकी खुशियो का अलोना विस्तार

भीड मत बनो
भीड जब किसी की गिरी छानी उठाती है
तो उसे छितरा देती है
छितरायी भीड को जोडने के लिए
जब भिंची मुट्ठियो वाली भाषा आगे आती है
तो एक पूरी पीढी स्वस्तिक के खॉचो से
बाहर आकर मॉगने लगती है
शोषण के आदिम सूत्रो की वह पाडुलिपि
जिसे प्रकाश मे आने से पहले बहुत पहले
खरीद लिया गया होता है
और ढूँढने लगती है उन बच्चो को
जो इसके जटिल सूत्रों के अध्याहार की प्रक्रिया
सीखे बगैर कक्षा छोडकर भाग गये होते हैं

अब भी क्या मुझे बताना पडेगा
कि खौलते पानी मे हाथ डालकर
जो अपना हाथ सुरक्षित बाहर खींच लेता है
वह जादूगर है
उसके हाथो हमारी सुनहरी उम्मीदो का ऑचल
सुरक्षित नहीं रह सकता।

1978

मुझे मालूम है

मुझे शक्ल दी है उस यायावरी ने
जिसकी जहरीली खरोंच
अपना अमिट निशान छोड गयी है
और जिसने मेरी निजता को सँवारा है
जिन्दगी ऐसे हस्ताक्षरो का सिलसिला बन गयी है
जिनमे से एक भी हस्ताक्षर
दूसरे से मेल नहीं खाता

आये दिन देर रात घर लौटने पर
घर के हर कोने से उमडते उलाहनो के बादल
रातभर गडगड करते रहते है
और थके हारे तन मन की पोर पोर दुखती है

मेरी आहत सुबहे सुलगती दोपहरे
और धुएँ की छत्तो के नीचे घुटती हुई शामे
मुझसे ऑख बचाकर
किसी कोने अँतरे मे गुजर बसर कर लेती हैं
मैं अपने पैतृक द्वार की दहलीज पर बैठा हुआ
भविष्य की आकृतियाँ बनाया करता हूँ
रात रातभर जागकर उन दिनो को
झकझोर कर जगाता हूँ
जिनकी ऑखो म सर्द सपने
औंधे अधमरे पडे हैं
पत्थर हो गये हैं हमारे मसूबे
कल्पना की टूटी खाट पर लेटे लेटे

आखिर हम कहाँ लगाये
इतनी सारी खोखली उपेक्षाओ का ढेर

अपनी जिन्दगी मे यन्त्रवत नधे रहने पर भी
मुझे मालूम है
कि पूँछ गिराकर भागती दुश्चिन्ताओ के बाँग देने से
कहीं पौ नहीं फटती
कि देश की नीलामी के वक्त
सबसे ऊँची बोली बोलने वालो की पूँजी कहा है।
कि सदियो पुराने महलो की नक्काशी
और मेहराबो को तराशकर आकार देता श्रम
हमारी नियामत है
कि इस देश के पेडो पहाडो नदियो और खानो की
विपुल सम्पदा अपनी कॉख मे दाबे आदमखोर
सडी गली पोथियो के बण्डल के नीचे
हमारी आत्मा को दफन करना चाहते हैं
कि सूखे बाढ अकाल दगे और महामारी मे
मारा गया हर आदमी
चुनाव घोषणापत्र से सुन्दर होता है
कि कैलेण्डर मे पन्द्रह और छब्बीस के अलावा
और भी अनेक तिथियॉ होती है
जब गुब्बारे और कबूतर
हवा मे उडना पसन्द करते हैं।

1979

कब तक

चाहे जितना घुमाओ इस टोटी को
इससे केवल आश्वासनो की सिसकार रिसती है
लोग लौट रहे हैं अपने खाली घडो के साथ
तुम भी लौट चलो

तुम्हारी उम्मीदो को फूँक तापकर
चिकनी सडको पर सरसर भागती कारे
तुम्हारे गाँव तक
खडजे बिछाने की योजना
कई बार स्वीकृत और निरस्त कर चुकी हैं
बरसात मे डूबे मुहल्लो और झुग्गी झोपडियो की
अन्धी बहरी गूँगी आबादी को मुँह चिढाते
स्वच्छता-अभियान बेस्वाद हो चुके हैं
तुम्हार सुनहरे सपना का मगलसूत्र पहने
तुम्हारी चुप्पी के हाहाकार से अपरिचित
तुम्हारे हिस्से के अनाज
धडल्ले से ब्लैक करती दुकाने
तुम्हारे दब्बूपन का इश्तहार है
बफर स्टाक मे अपना कोटा ढूँढती तुम्हारी ऑखे
अपना सा मुँह लेकर रह जाती हैं
और उसे हजम करने वाला पेट
न जाने कहाँ गुम हो जाता है

दही और अक्षत से टीके हुए स्वस्तिक के व्यूह मे
कैद है तुम्हारा आकाश
तुमने पिंजरे की हर फॉक से
अपनी चोच बाहर की है

पीछे हटे हो आगे बढ़े हो
कितना आकाश खाली पड़ा हुआ है
तुम्हारी उड़ान के लिए नियामत बनकर

अभी दो राजकुमार
यह तय नहीं कर सके हैं
कि तीर से बिंधी तुम्हारी लहूलुहान देह पर
किसका अधिकार है

आज फिर रह गया हूँ मैं अवसन्न
कि कहीं से नहीं फूटती वह राह
जिसपर चलकर हम इस गड़गच्च से बाहर निकलते
जिसने डकार ली है
लहराती फसलों से करो हमारे सिवान की महक

बड़ी बेचैनी से बज रही है
हमारी बेसब्री की साँकल
आखिर कब तक मन मारकर हम अपनी
नियति का ललाट बाँचते रहेंगे।
कब तक वे हमारी आवाजों का सौदा करते रहेंगे।
कब तक।

पीढियों का दर्द

यहा आकर खत्म होता है एक किस्सा
उन सिलसिलेवार समझौता का
जिनपर फुदकते थे
हमारी उम्मीदो के पछी

अब हमने लबे समय के लिए
लगर डाल दिया है
किसकी नाव इस हद तक डगमगाकर
किनारे लग पायी है !

इसी तरह होना ही था पटाक्षेप
हमारी सहमती भूमिकाओ का
अब दुतकारती हवाएँ कोसता परिवेश
और निरुपाय भविष्य रह गया है शेष
हमारे आसपास
और अटक गयी हैं साँसें उन क्षणा की
जिनकी अस्फुट यादे
आग के पिण्ड की तरह
धधक रही हैं हमारी खाल पर

हमारी पीढिया की विपन्नता लट खोलकर
हर आगन्तुक को आपबीती सुना रही है
और सुलग रही है हमारी निजता
इन अकुलाती धडकनो की आँच मे

अब कोई फोकट मे अगुआई करने को
तैयार नहीं होता
किसी बुनियादी मसले की

क्रान्ति की शंखध्वनि दाँत पीसकर
डाँट रही है
इतिहास की सच्चाई को झुठलाने वाले
हर खुदगर्ज संशोधन को

बहुत कुछ हासिल करने को
हमने बेड़ियाँ पहनी थीं
अभी तो अपने हिस्से की
हरी फसल देखने के लिए
हमें खूँटा लगाकर
सिर्फ डाँड तक जाने की छूट है
हमारा जी कचोटता है
कि कहीं हमारा भी कोई खेत खलिहान होता
जिसमें कुछ भूसा और कुछ अनाज होता
पास ही में हमारे ढोर होते चरागाह होता।

1979

वर्तमान की सतह पर

लो फिर उभर आया है मेरा अतीत
वर्तमान की सतह पर
फिर कुरेदने लगा है वह
बुझे अलाव सी मेरी मन स्थिति को
जिसपर काल ने गाहे बगाहे
न जाने कितनी परतें बिछायी हैं

आज फिर किसी आहत स्वर ने
मेरी ओर अपनी गर्दन घुमायी है
जिससे ऑख मिलते ही
हिलने लगा है मेरे सधते स्वर का बेडा
मन्द पड गया है एक राग उभरने से पहले
और अपने डैने फडफडाने लगा है
मेरा अनुभव ससार

आये दिन लगा रहता है मेरे साथ
एक न एक सवाल
जो निचोडता रहता है मुझे निर्दयता से
मैं स्मृति की मद्धिम रोशनी मे
अपनी धुँधली आकृति टटोलता हूँ
और अपने लम्बे सघर्ष की डोर थामे
वर्तमान को निहारता हूँ

वर्तमान अनगिनत घावो से भरा वर्तमान
जहाँ जिन्दगी एक ऐसा सवाल बन गयी है
कि उसे जितनी बार हल करता हूँ
वह उतना ही गूढ बनकर तन जाती है

मेरे सामने धुँधलका सा छा जाता है
कुछ राहत पाने के लिए
अपनी जगह से थोडा सरक जाता हूँ
जी हल्का नहीं होता

वर्तमान की गुत्थियाँ मन मे डेरा डाले रहती हैं
जिन पृष्ठो पर उनको हल नहीं कर सका हूँ
वहाँ मेरे सोच की सजीदगी जमी होती है
और अनगिनत गुणा भाग जोड घटाने के टुकडे
एक दूसरे से सन्यस्त अपनी-अपनी धूनी रमाये होते हैं
वहीं से अगली यात्रा के स्वर्णिम सूत्र खींचकर
फिर उसी अविराम सिलसिले मे बँध जाता हूँ।

1981

गोताखोरी

अब तो डूब ही रहा हूँ
अतल समुद्र मे
मोती लेकर बाहर आने की उम्मीद लिए
पता नहीं घाघे और शैवाल
यह गुस्ताखी माफ कर पायेगे या नहीं
जबकि अन्धेरी राह के तिलिस्म को
तोडन का एक भी टोटका
मेरे पास नहीं है

हद है कि अगाध जलाशयो के तट पर
वे लोग भी मछली मारने की
तैयारियो मे लगे हैं
जिनके पास जाल तक नहीं है
गोताखोरी का यह कारोबार
बहुत घाटे का सौदा है
लेकिन कैसी जिद है कि
कविता लिखने के लिए एक अदद हाथ
और एक डॉट पेन ही काफी है
समुद्र तट पर किसी के आने जाने पर
रोक लगाना सम्भव नहीं

कितनी वीरान हो गयी है अपनी दुनिया
तुम्हारे पीछे कविता !
आसपास से जुडे रहने की चिन्ता
गाढी नींद मे डूबी मेरी चेतना को
निर्वस्त्र कर देना चाहती है
टालता ही रहा हूँ अपने सारे काम

न किये जाने की सीमा तक
तुम्हारी खातिर
चारो तरफ से फालतू होने की सनद
निशुल्क भेट किये जाने पर
ढूँढने लगा हूँ अपनी सार्थकता
तुम्हारे काम आये शब्दो मे।

1978

कितनी देर से

कितनी दूर तक मेरे साथ और चलोगे
काट खाने को दौडते इस अन्धेरे मे
कुछ भी तो नहीं दीखता इतना कीमती
जिसे मैं रख दूँ तुम्हारे हाथ मे जाते जाते
टूटने को कई बार हुये हैं हमारे सम्बन्ध
जिन्हे बचा पाने की खुशी ही बची है मेरे पास
जानता हूँ अगले मोड तक यह भी काढकर
मैं धर दूँगा तुम्हारी आरती की थाल मे

यह सुनना अच्छा लगता है कि
हमारी यादो का पलेवा होते होते
तुम एक स्वप्नमयी गन्ध लिए उतराओगे
जिसकी सुनहरी पाँखों की ओट मे लुढकी होगी
एक अदद खामोशी

नहीं कह सकता
कैसे तुम्हारी भीगी पलको को पोंछे बिना
दबे पाँव सारी धूप ओस मे उतर गयी
जहाँ स्मृतियों के जूठन पर पलती
अपनी आकाक्षा की भेट चढाकर
भावुकता के क्षीण धुएँ मे नम हो आयी हैं मेरी आँखे

सँजोये कब तक रहूँ तुम तक पहुँचने की ललक
ऊबकर कहाँ बैठूँ बुनने अपने सपने
ठिठुरते मौसम के खाते मे कैसे भरूँ
ठिगना दिन सिमटती रात अनमनी हवा बिखरती धूप
मुग्ध हो लेता हूँ यह सोचकर

कि तुम्हारे होने से एक खुशनुमा माहौल
मेरे आँगन मे मुस्कराने लगता है
ठिठक जाता हूँ चलते चलते
कि कैसे कितनी देर से अकेले ही चल रहा हूँ
काँप जाता हूँ यह सोचकर कि
मेरे हाथो मे तुम्हारा हाथ नहीं है।

1980

ऐसे जिया

सुबह का निकला
शाम को घर पहुँचता हूँ
बालू की आखिरी खेप ढोकर
लौटते मजदूर की तरह

जेठ की तपन ऐसी
कि नल की अँतडियो मे भी पानी नहीं होता
पडोस से हैंड-पम्प चलने की आवाज आती है
पानी की आवाज जैसे जिन्दगी हो
बाल्टी लेकर उधर ही बढता हूँ
जैसे प्यासी गायो के साथ प्यासा चरवाहा
गोमती के करार से नीचे उतरता है
पानी मिलने की उम्मीद मे आग बढती
खाली बाल्टी-सा जिया

जब भी कुछ जलाया उसका धुआँ भी पिया
यहॉ खोदा वहॉ पाटा
पाटे हुए को फिर खोदा खोदे को फिर पाटा
अन्धे की ऑख बनना था मुझे
भूखो का कौर बनना चाहा
कहीं चादर बिछायी कहीं खाट
पत्थरो ईंट के अद्धो और ककडो के बीच से
खुद को बचाकर आगे बढते टायर सा जिया

सरपत के जुट्टो से घिरा घर मेरा
बबूल ओर बेल के कॉटो की झाल से
घिरा खेत मेरा

लोग जल्दबाजी मे तिरछे कटकर
मेरे खेत मे रास्ता डाल देते हैं
मैं वहॉ कॉटो की झाल रख देता हूँ
फिर भी लोग नहीं मानते हैं
मैं डॉड पर कब तक खडा रहूँ ?
हाल मे बोये गये
खेत के बीच से गुजरते रास्तो पर
बिछे कॉटो की झाल सा जिया

मैंने पैसा नहीं आदमी कमाया है
बाबूजी अक्सर कहते थे
उनके कमाये लोग सूद पर पैसा कमाते हैं
और मुझे देखकर अपने तेलहे चीकट गमछे से
मुँह तोप लेते हैं अनचिन्हार समझकर
मैं बिसुकी गायो और बकेना भैसो के
गरजू गोसएँ को झॅसने की विद्या नहीं जानता
मैं उनके लिए एक व्यर्थ का शब्द होता हूँ
मैंने शब्द कमाया है
शब्द जो न उन्हे बीडी पिला सकते हैं
न कलकत्ते का किराया दे सकते हैं
शब्द जिन्हे गॉव मे
अपनी हॅसी उडाये जाने का अदेशा है
ऐसे शब्दो की खलरी मे
धडकते प्राण सा जिया

मैं अखबार की ऑख से देखता हूँ
अखबार की ऑख मे मोतियाबिन्द उतर आया है
अखबार का आपरेशन होना चाहिए
जबकि डाक्टर अखबार पढने मे मशगूल हैं

ऐसी पत्र पत्रिकाएँ जो रजस्वला होने से पहले ही
अपराध तत्र की हविश का शिकार हो जाती हैं
और अपने मालिको की मशा का भ्रूण ढोती हैं
ऐसी बुझी बुझी मुडी तुडी सडी गली खबरो के
दलदल मे फँसे सम्पादको और पत्रकारो
उन्हे छापती मशीनो ढोती साइकिलों पढती आखों की
ठण्डी बेजान लाचार अनुदिन मद्धिम होती
बेस्वाद आवाज सा जिया।

1995

कितना सोचता रहा

न न करते हुए कभी
एक भुनी मछली मुँह मे डाल ली
और बकरे की गर्दन पर गँडासा चलने तक
वहीं खडा देखता रहा
कितना मरता रहा

अनचाहे ही किसी के खेत से मटर की छीमी
या ईख तोडकर स्वाद लेता रहा और
अपने खेत से हॉककर सॉड या भैंसे को
आगे की ओर बढाता रहा
कितना बचता रहा

अनजाने ही जुआ खेलते लोगो तक जाता रहा
शराबियो से बतियाता रहा
शरीफो को अपमानित होते देखता रहा
अनायास ही दूसरो की जमीन हडप लेनेवालो का
कुशल-क्षेम पूछता रहा
पडोसियो का घर उजाडकर
पुलिस की जेब भरने वालो की
चारपाई पर बैठता रहा
कितना टूटता रहा

राह चलते सहसा किसी के मिलने पर
जिधर कोई काम नहीं है उधर जाता रहा
धूल धक्कड में फँसी पटरी की दुकान पर
निहायत गन्दी बेच पोछकर बैठता रहा
धोये-अनधोये कप को पीता रहा
बिना पढी पत्रिका हाथ मे लिये
घर से निकलता रहा
कितना बीतता रहा

कभी अबूझ गुरुता का इन्द्रधनुष ढोता रहा
तो पखुडी सी मसृणता सजोता रहा
कभी धारदार कॉटे की तीखी चुभन सा
कसकता रहा
तो पानी पानी होकर बहता और सूखता रहा
कितना छीजता रहा

इसी तरह पेड पेड चढता उतरता रहा
डाली डाली सुस्ताता रहा
कच्चे पके फल सा जमीन पर बिछता रहा
पात पात अॅखुआता और मरकता रहा
कितना नुचता रहा

खलिहान की कहानियो मे
अपने काम की बात चुगता रहा
बेटे के सामने अपने आदमी से
रोज गाली खाती औरत की
जिन्दगी के रग सा उतरता रहा
कितना बुझता रहा

एक इज्जत लुटी लडकी के बाप की तरह नि शब्द
आतकवादियो की तनी बन्दूको और सामने खडे
बेबस बस यात्रियो के बीच बचे
चार अगुल फॉक सा महसूसता रहा
सिर्फ किराया मॉगने के कारण
सुनसान सडक पर धुऑधार लात घूसा खाते
चीखते चिल्लाते रिक्शेवान की कातर पुकार सा
चोराहे से पुलिस चौकी तक गूँजता रहा
कितना मरता रहा

पतझड मे नगे हो चुके पेडो की तरह उदास
बेटी की शादी मे खाली हाथ बाप सा निढाल
आधी से कम बची बीडी मागकर पीते मजदूर की
अतृप्त फूँक सा तरो ताजा

शक्ति न चलने से अपनी उजडती खेती
सॅभालने मे असमर्थ जर्जर बाध वाली खाट मे धॅसे
किसान की कुढन सा कसमसाता
टूटी तीलियो को साबूत तीली मे लपेटता
किसी समय दुहर जाने वाली साइकिल के
कामचलाऊ पुर्जे सा घिसटता आगे बढता रहा
कितना जूझता रहा

सिर्फ दस रुपये मुनाफे पर खूँटा बदलते
जानवर के गुसएँ सा लाचार
बस इने गिने मौकों पर आ धमके
लोगों को आजमाता और खुद को ऑकता
माघ पूस के ठाले मे
खाली हाथ किसान के दिन सा दयनीय
हॉथ फॅसा होने पर भी
उधारी चुकाने के जुगाड मे
तिल तिल जलता रग–रग दुखता
चौखट चौखट लॉघता रहा
कितना हॉफता रहा

जगह–जगह पानी मरने से
कमजोर होती छत सा चिन्त्य
जलते दीपको के बीच बुझे दीपक सा निरुपाय
कर्फ्यू के बीच घनी बस्तियो से
सडक तक आती जिन्दगी सा आशकित
कभी जाम लग जाने से सडक से गली की ओर
भागती भीड सा उत्साहित
कभी गली गली घर पहुँचने के चक्कर मे
और बुरे फॅस जाने से पछताता
कितना अफडता रहा कितना ओजता रहा
कितना सोचता रहा।

1992

इस माहौल में

कौन जाने इस घुटनभरे माहौल से
घबरा कर किस ओर निकल पड़ूँगा
अपने बोझिल मन को बहलाने
जो अमावस–सा बना रहता है दिन रात

कह नहीं सकता कि ऐसे मे
कितनी देर तक बाँधकर रख सकूँगा
खुद को अगले मोड तक
किसी चेहरे पर अपनी दृष्टि गडाये
किसी क्षण को मनचाही शक्ल देते हुए
किसी दरार मे रग रोगन भरते हुए
किसी गुत्थी पर माथापच्ची करते हुए
यह जानते हुए भी कि सिनेमा से छूटी भीड
और खडे खडे अखबार बेचते लडके की मजबूरी
समानान्तर रेखाओ की तरह दूर दूर तक
एक दूसरे से बेफिक्र होती हैं

मैं चौराहे की बहुमजिली इमारतो पर उतरती शाम
के साथ घर लौट आता हूँ

इस वर्ष कुछ ज्यादा ही गम्भीर हो गये अपने मित्रो
अग्रिम पैसा लेकर चम्पत हो गये मिस्त्रियो
किसी समय भी घर पर न मिलने वाले लेखको
अछोर जाम मे फॅस जाने वाली यात्राओ
और कडी उम्र मे सात फेरे लेते उकताये जोडो
के बीच कवायद करते हुए मैंने यह जाना
कि समय का पाटा ही सबको समतल करता है
कि ईमानदारी का रास्ता बेहद घुमावदार होता है
कि शब्दो का नशा घर उजाड देता है
कि पहिये का घूमते रहना ही सुन्दर लगता है
कि एक न एक दिन सब का दिन लौटता है।

1989

वहीं छूट गया है जो

कौन उँडेल रहा है मेरे कानो मे
उन स्वरो को
जिनकी जडे पाताल तक गयी हुई है
गुँथी हुई हैं मेरी जिन्दगी से जिनकी साँसे
गूँजती है जिनकी धुन
हवाओ मे दिनरात
छनकर ये स्वर कितनी दूर तक
तिर रहे होगे मुझे क्या मालूम !

नहीं तय कर पाता यदि मैं
उन अनुभूतियो की राह
जिनपर गुजरे है इतिहास के कारवाँ
तो भी मेरे लिए स्थान सुरक्षित रहता है उन घरो मे
जिनके कच्चे फर्श पर
रोटी हाथ मे लिए बच्चे
दाल चुरने से पहले
खाने बैठ जाते हैं

उभरता है एक आँगन जहाँ कभी मैने
सप्तर्षि के सातो तारे
पहली बार गिने थे
वहीं छूट गया है
मेरे अनुभव का एक छोर
कि जहाँ सप्तर्षि न उगा हो
वह आकाश आकाश नहीं
एक व्यर्थ का डरावना विस्तार है
जिसे कोई विशालकाय जन्तु
निगल जाता तो अच्छा होता।

1987

तुम्हारी छाँह में

ऐसा कुछ भी नहीं बोया और काटा मैंने
कविता की उर्वर माटी मे
जिसे देख मरुभूमि की बॉझ कोख शर्माती
कितने दिन काटे हैं मैंने
निर्वासित एकान्त मे गुमसुम बैठे हुए
जहाँ काफी दूर पर गुजरती गाडी की आवाज
भग कर देती रही मेरी एकाग्रता को

अक्सर उस एकान्त मे बैठे हुए व्यर्थ ही
टेरता रहा कविता मैं तुम्हे बार बार
ऊबकर उठा हूँ अब और ढूढूँगा तुम्हे
उन राहो में जिनपर चले जा रहे हैं लोग
हर पद चिह्न पर गहरी नजर डालूँगा
उनमे से कोई शायद तुम्हारा भी पद चिह्न हो।
ढूढूँगा तुम्हे मैं उस सर्द हवा मे
जिसमे औरते बासी रोटी तक खाये बिना
अपने अधनगे बच्चो को गोद लिये
काम पर निकल जाती हैं

खेतो खलिहानो कल कारखानो मे खटते पिसते
रूखा सूखा खाकर उम्र तमाम करते
लोगो के बीच उठते बैठते
मैं तुमसे बातें करूँगा।

1979

नाप

नापने का तो वे हर बार
शब्दो की लम्बाई और चौडाई नापते हैं
पर हर बार उनकी ऊँचाई नापना
भूल जाते हैं

चाहे जितना ही झुककर आना चाहता है कोई शब्द
उनकी कविता के चौखटे मे
कहीं न कहीं उसका सर टकरा जाता है
वह खून से नहा जाता है।

1996

दम तोडते शब्द

लो फिर आकर बैठ गयी
मेरी तनहाई मेरे पास
जी नहीं मानता है उसका भी शायद
मुझे अकेला बैठे देख
अब मुझे ही बडबडाते रहना है लगातार
बिना कोई उत्तर पाय
जिन्दगी लाँघ गयी है जैसे
किसी अपशकुन का डरावना दुर्लंघ्य विस्तार

दैनिक समस्याएँ समाधान की तलाश मे
पूछताछ – खिडकी पर पंक्तिबद्ध खडी हैं
पर हर कहीं फाइलो मे
सुनवाई की तिथियाँ ऊँघ रही हैं
जिसकी नींद खुलती है
वही रात लम्बी बताता ह

अब मन फट गया है
रोज रोज की किचकिच से
आँच आती है उन बातो से
जा हर आगन्तुक क आग
बासी रोटी की तरह धर दी जाती है
तबीयत भारी हो जाती है पढकर
उन किताबो को जहाँ हमारी समस्याएँ
कभी नारेबाजी की शक्ल मे उभरती हैं
कभी इतनी दुरूह भाषा मे कि
एक शब्द कोश से दूसरे शब्द काश की ओर
दौडना होता है

घर में न होने की बात

पता नहीं क्यो मेरे हाथ हमेशा
उसी जगह पर टटोलकर कुछ पाना चाहते हैं
जहाँ किसी भी हाथ को
पाँचो उँगलियाँ मयस्सर नहीं

उन्हीं सवालो की उधेड बुन मे बुत बना रहता हूँ
जिनके उत्तर का कोई सूत्र नहीं मिल पाता
जिनकी देह पर एक बालिश्त कपडा भी नहीं
उन्हीं की दुकान देर रात तक खुली रहती है
इन्हीं बातो को सोचते सोचते
वह गाँठ देना भूल जाता हूँ
जिसके लिए घर वापस होने पर
मुझे दो डबडबाई आँखें देखती हैं

अपना नसीब ही कुछ ऐसा है
कि अपने रास्ते पर चलते रहने पर भी
अक्सर लोग मेरी दिनचर्या को कूट छानकर
मेरे लिए घिसी पिटी नसीहतो का टाट बिछा देते हैं

मुझे एतराज न उस रास्ते पर है
जिससे होकर आज मैं टहलने गया था
और न उस रास्ते पर जिससे मैं घर लौटा
फिर भी मैं घर देर से पहुँचा
और घर देर से पहुँचना उतना खराब नहीं
जितना घर मे होते हुए भी न होना

देर रात घर लौटने पर

देर रात घर लोटने पर
गला घोटने लगता है
सडक पर गहराता अन्धकार
और ऑखे फाड फाडकर घूरता है मुझ
दूर दूर तक पसरा सन्नाटा

कुण्डी खटकते ही कमरे मे तैरने लगती है
एक खामोश हलचल
नींद और थकान मे डूबी
ऊँघती हुई उठती हैं दो ऑखें
पडोस की खिडकी से झॉकती रोशनी
चीर देती है घनी पर्त अन्धेरे की
ऑगन मे स्टोव से निकलता काला काला धुऑ
आकुल सा ऊपर उठता है
और बुझने लगते हैं एक एक कर
आसपास खड मकाना के चिराग

घर के एक कोने मे सिमटी पडी मॉ
मुझे अपने बिखरे सपनो की तरह निहारती है
और आधी रात रोटियॉ सेकती पत्नी की
किस्मत पर पछताती है

खा पीकर मै कविता की एक अच्छी किताब
लेकर पढने बैठ जाता हूँ

घर दर रात लाटन पर
कुछ और तरह का हा जाता ह
जिसमे तितर बितर होती हैं कितनी स्मृतियॉ
आने जाने वालो की यादे उनके झूठे वायदे
उलाहने इन्तजार और निराशा मे गुजरे पल

कभी बेहद कडी धूप मे किसी का आगमन
कभी किसी भीगते हुए का प्रस्थान

घर देर रात लौटने क लिए नहीं होता
घर की ऑखे कडुआती हे

घर के जिस कमरे म मैं रहता हूँ
उसमे मेरा वर्षो का बसियाया आना जाना है
कुछ झाले हैं जिनकी मेरे बारे मे एक राय है
भाषा की पगत मे आपबीती परोसती भावुकता है
कविताऍं हैं जिनमे इन सबके होने का एहसास है
इतनी चिलकन समायी होती है मेरे आसपास
कि मैं नाप भी नहीं पाता
अपनी जिन्दगी का उठता गिरता तापमान

कैसी है यह दिनचर्या एक पथरीली दिनचर्या
जो अपनी धुन मे मग्न है
जिसने मुझे कहीं का नहीं छोडा है
और जिसे नहीं सूझता है देर रात मेरे घर लौटने
की विवशता के पीछे कोई तर्क

अनन्त भावो के थपेडे सीने मे छिपाये
महाकाल की चाक पर खुद को मनचाही शक्ल देते हुए
मैं अपनी दुर्निवार व्यस्तताओ मे डूबा रहता हूँ
कभी इस दरवाजे के ऑसू पोछता हूँ
कभी उस घर की खपरैल बन जाता हूँ
कभी शब्दो के रेशे रेशे उधेडता हूँ
तो कभी भाषा के जलते माथे पर
गीली पट्टी सा चिपक जाता हूँ
पर देर रात घर लौटने पर घर के बाहर
अपनी निर्धूम सहजता की आग मे
जिन्दगी को सही अर्थ देने वाले सन्दर्भ
तिल तिल कर जलते रहते हैं।

1979

सारी जिन्दगी

न उतरे तारे न चॉद
कभी मेरे मन के आकाश मे
जबकि मै बैठा रहा इसी आस मे
सारी जिन्दगी

मैने शब्दो को दियो सा सजाया
और सोने का पूर्ण विराम लगाया
भाषा के बाग मे शहद के छत्ते सा
लटका रहा
कविता को अमृत से नहलाया
पर अपने चूते घर को उजाडकर
जब भी छवैये को गुहराया
उसने मुझे आषाढ तक लटकाये रखा
सारी जिन्दगी

मैने एक एक धागे की देख भाल की
चरखे और पूनी को सँभाल कर रखा
कुछ लोग थे सजे धजे कुछ घूमते मिले उघार
मैं ढोता ही रहा अपने हिस्से का कपास
सारी जिन्दगी

मैंने रोते को चुप कराया बैठा रहा उसके पास
मै हँसते लोगो के पास से गुजरा बिना गुरेज
उनका ध्यान बँटाया
मे गहरे घाव पर बँधी पट्टी सा लगा लोगो को
मैने अमावस तक सब्र किया
और प्रतिपदा से ही निहारता रहा चाँद
सारी जिन्दगी

हलवाहे के पीछे पीछे मै बीनता रहा घास
पत्थर काट काट कर मैंने बचाया अपना खेत
कभी मिट्टी मे मिला खाद सा कभी फसल सा लहलहाया
कभी चरा गया रात भर
चिहुँक कर उठता और बैठता रहा
मुँह अँधेरे ही मैंने अपना बिस्तर समेटा
बैलों को नाँद से लगाया
न दिन को दिन समझा न रात को रात
सारी जिन्दगी।

1991

भूख का सवाल

अब धीरे धीरे बढ रहे है हमारे हाथ
तोड लेने के लिए
अगूर के उन गुच्छो को
जिन्हे अन्य हाथो ने हमारे लिए
खट्टा घोषित कर दिया था

जब भी हमने कोई मनचाही चीज
अक मे भरी है
जब भी हमारे सपने
सुखद अन्त की ओर बढे है
सहसा हमारी नींद उचट गयी है

अपनी जिन्दगी के लिए
साँसे जुटाने के प्रयत्न मे
हमने अपना हाड मास दॉव पर लगा दिया है
और अपने पसीने की हर बूँद को
कसाइयो के टकसाल के हवाले कर दिया है
लेकिन हमारी सारी आहुतियो के बावजूद
जब दोपहर मे ही हमारा सूरज
बेझिझक डूब जाता है
तो हमारे घर के ऑगन मे उभरते हैं
दो बालिश्त गुमसुम आकाश
मटमैला चॉद और निस्तेज तारे

अक्सर हम अपनी दरकती उम्मीदो
की मेड पर खडे होकर
ऊँघते मौसम की आँखों मे झॉकते हैं

तेल के टैकरो से लेकर पेट्रोल पम्प तक
मिलो से महलो तक
धूल और पसीने मे सनी हमारी देह
टूटी हुई प्रत्यचा सी खिचकर टूट जाती है

हम क्या पहुँच पायेगे
उन दिमागो की पेचीदियो तक
जो हमे गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने के
ऑकडे गढते रहते हैं।

रोजाना हम मुँह अँधेरे उन बस्तियो की
पगडडी पकड लेते हैं
जिनमे काले सूखे चीकट बच्चे
दिन उगते ही हाथ मुँह धोये बिना
बासी रोटी खाने की हडबडी मे
अपने पेशाब पर फिसलकर गिर जाते है
जिन्हे यह भी नहीं मालूम कि
रोटी का खून से सीधा सम्बन्ध होता ह
कि रोटी की जरूरत जब खून मे सन जाती है
और भूख का सवाल
जब फाइलो के ढेर मे दबा दिया जाता हे
तब खून की हर बूँद
रोटी की हॉ मे हॉ मिलाने लगती है।

1978

रोज ही तो

रोज ही तो मुझे जगह जगह जाकर
रग रागन जुटाना है
आदमी की जिन्दगी मे उभरती दरार
भरने के लिए
कलम कूँची की इस यात्रा को
कभी नहीं रुकना है

रोज ही तो मुझे किसी को तडपता देखकर
उसकी जिन्दगी से मिलता जुलता
एक रग घोलना हे
कभी उसे थोडा गाढा कभी थोडा हल्का करना है
रगो के उतार चढाव के साथ
किसी ऐसे घोल तक पहुँचना है
जिससे रगी चुनरी पहनकर
तार तार हो चुकी जिन्दगी भी सँवर जाय

रोज ही तो मुझे एक दिशा टटोलनी है
उसमे दो चार डग भरने हैं
उसके चमकते सूरज से बातचीत करनी है
उधर से आती हवाओ का हालचाल पूछना है
उस ओर जाकर गुम हो चुके
लोगो की खबर लेनी है
उधर से निराश लौटते लोगो को
गले लगाना है
किसी सिर को उसका धड दिलाना है
किसी उँगली को उसका नाखून

रोज ही तो मुझे एक शब्द लिखकर
फिर उसे काट देना है
काट कूट करते हुए
किसी ऐसे शब्द तक पहुँचना है
जिसकी उँगली पकडकर एक अन्धी कविता भी
सही सलामत अपनी दहलीज पर पहुँच जाय
रोज ही तो मुझे यह सब करना है
रोज ही तो।

1983

एक दिन

एक दिन एक बीज बोता हूँ
फिर उसे पानी देता हूँ

एक दिन पौधा बडा होता है
उसके फूलने फलने तक मैं
उसकी देखभाल मे लग जाता हूँ
उसके फूलो की महक ओर फलो के स्वाद को लेकर
लोग अलग-अलग खेमो मे बँट जाते हैं
मै उदास हो जाता हूँ

अरसे बाद एक दिन गॉव जाता हूँ
मित्र पूछते हैं कहाँ डुबकी मार कर
गायब हो गये थे
मैं उन्हे क्या बताता
कुछ दिन गॉव मे घूम घामकर
एक दिन शहर लोट आता हूँ
मित्र पूछते है गॉव से कुछ लाये
मैं खेत मे गदराकर झूमती बालियो मे कसे
दानो सा कसमसाता हूँ

एक दिन एक वाक्य लिखता हूँ
फिर निर्मम होकर उसे
घिसता हूँ, मॉजता हूँ, पुर्जे पुर्जे कसता हूँ
एक दिन पूरा शहर उसे काटने छॉटने दौडता है
मैं उसके बचाव मे आकाश पाताल
एक कर देता हूँ
एक दिन लोग उसे दुबारा सुनना चाहते है
मैं शब्दो को पलको से उठाकर लाता हूँ
और ऑखो से सुनाता हूँ।

1996

क्या लेकर घर से निकलूँ?

क्या लेकर घर से निकलूँ ?
क्या लेकर ?

पानी भरी खान मे फँसे मजदूरो के लिए पम्प
या बोस्निया के घायल नागरिको के लिए एक बोतल खून
क्या लेकर घर से निकलूँ ?
क्या लेकर ?

बीती रात बलात्कार के बाद
कत्ल कर दी गयी लडकी के
अधोवस्त्र ऊपर सरकाती पुलिस के लिए
विशिष्ट सेवापदक
या घटना स्थल पर आ जुटी
भीड का निर्वीर्य आक्रोश
क्या लेकर घर से निकलूँ ?
क्या लेकर ?

टेन्ट मे दिन काट रहे कश्मीरी विस्थापितो के लिए
एक दिन का आटा और जवाहर रोजगार योजना
या चकवॅड खाकर भी गुजर बसर करते
आदिवासियो के लिए चन्दे की रसीद
क्या लेकर घर से निकलूँ ?
क्या लेकर ?

हर बारिश मे बैठ जाने वाले
कच्चे मकानो के लिए
विकास प्राधिकरण के जर्जर फ्लैट
या बाढ मे घिरे घरो से

अपने कीमती सामान लेकर
रात बिरात भागते लोगो के लिए बाढ राहत शिविर
क्या लेकर घर से निकलूँ ?
क्या लेकर ?

इतिहास के किसी काल खण्ड मे
बेगुनाह मार दिये गये लोगो की विधवाओ
और अनाथ बच्चो के लिए चुनाव घोषणापत्र
या आये दिन गुण्डो अपराधियो छुटभैयो की
घिनौनी हरकतो के बीच घुट घुटकर जीते छटपटाते
लोगो के लिए मानवाधिकार आयोग का हस्ताक्षर-अभियान
क्या लेकर घर से निकलूँ ?
क्या लेकर ?

दिनभर होटलो मे जूठे बर्तन मॉजते बच्चो को
बात बात पर लात घूसा जडते मालिका का वहशीपन
या झुग्गी झोपडी के किसी गन्दे बच्चे का नाखून काटकर
उसे धो पोछकर सहसा स्कूल की ओर ठेल देने का मखौल
क्या लेकर घर से निकलूँ ?
क्या लेकर ?

कहीं तो रहने लायक कुछ नहीं रह गया है
इसका अफसोस
या इस दुनिया को नये सिर से
ठीक ठाक करने का सकल्प
क्या लेकर घर से निकलूँ ?
क्या लेकर ? ॥

अपनी जगह पर

अरे कुछ भी तो नहीं बचा है
अपनी जगह पर
न हँसी न खुशी न आँसू
न जनता न वोट न सरकार

विवादो ने उजाड दी है
गाँवो की हँसी खुशी सिवान की महक
बिखर गयीं चीजे और चीजो का भाव
न दुकान बचीं न दुकानदार

सडको पर धक्के खाती और धकियाती हुई भीड
दिशाहीन बहती है
पुलिस उधर ही जाने से रोकती है
जिधर जाने को निकला हूँ
कहीं तिलभर जगह नहीं बची है
खडे होने और साँस लेने के लिए
लोग उधर जाने से कतरा रहे है
जिस ओर बढने से उन्हें
अपने बीवी बच्चो की आवाजे
नजदीक आती सुनायी देती हे

वक्त भी कैसा है कि कल के लिए
पैसे न बचे होने पर
एक अजब सी बेचैनी जिस्म पर रेगने लगती है
लगता है जैसे चारा खत्म हो जाने पर
सिर्फ कँटिया के भरोसे
मछली मारने की जुगत मे
नदीतट पर बैठे हो

एक एक कर सब कुछ विवादास्पद हो चला है
एक भूखण्ड की आग बुझती है
तो दूसरा सुलगने लगता है
धर्म जाति गोत्र क्षेत्र भाषा और सस्कृति
सबको गोठ दिया गया हे
अपने खॉचे मे फिट करने के लिए
लोग आदमी को चारो तरफ से छील रहे हैं
लोग क्या धर्म क्या गली क्या गॉव क्या
पुलिस क्या नेता क्या सब अपनी जगह पर
अपना होना टटोल रहे है
अपनी जगह पर कुछ नहीं रह गया है
अपनी जगह पर अपनापन भी नहीं बचा है

आज मैं अपनी जगह कुछ ज्यादा ही रुक गया
आज मैंने कुछ ज्यादा ही
सामान खरीद लिया
क्यो खरीद ली मैंने इतनी सारी चीजे
जबकि चीजे अन्दर से मर गयीं हैं

जैसे तैसे घर पहुँचता हूँ
घर फेक दिये गये ठोगे सा विवर्ण
गली मे पडा लगता है
अखबार उठाता हूँ
सारी जगहे अपराधो ने घेर ली हैं
कहीं पर मेरे लिए एक शब्द नहीं बचा है
एक कविता नहीं बची है किसी पृष्ठ पर
लेकिन मै तो कविता बचाने के लिए ही
घर से निकला था

मैं तो कविता के पक्ष में ही
खड़ा रहा आजतक
अपना सबकुछ फूँक तापकर
सिर्फ कविता ही तो बचाता रहा हूँ
यह क्या हो गया !
थका माँदा सोच मे डूब जाता हूँ
बार बार सर खुजलाता हूँ
अचानक पाता हूँ कि कविता तो अपनी जगह पर है
आदमी और आदमी के बीच
कविता ही तो बची रह गयी है
मैं ही उसे कहीं और ढूँढ रहा था
गजब ! आज कविता ही
अपनी जगह पर बच गयी है
सिर्फ कविता !

199.

रोज की तरह

रोज की तरह महँगू ने
बीडी पीते हुए अँगीठी सुलगायी
आज उसे वोट देने जाना है

रोज की तरह साग और दही
बेचने वाली आयीं
आज उन्हें वोट देने जाना है

रोज की तरह मैं भी सब कुछ कर रहा हूँ
आज मुझे भी वोट देने जाना है

रोज की तरह आज सब काम हो रहे हैं
जबकि आज सबको वोट देने जाना हे

वोट देकर लोग अपने-अपने घर
लौट रहे हैं
रोज की तरह लोग
घर लौट कर नहीं आये हैं।

1991

टेढी-मेढी रेखाएँ

एक सीधी रेखा खींचना चाहता हूँ
कुछ दूर तक सीधी जाकर
वह टेढी हो जाती है
जहां से वह टेढी होती है
वहीं से उसे सीधी करने के लिए
दूसरी रेखा खींचता हूँ
कुछ दूर तक सीधी जाकर
वह भी टेढी हो जाती है
इस तरह एक भी रेखा
अन्त तक सीधी नहीं बनती

कभी कभी जिन्दगी भी कुछ इसी तरह
सीधी रखा म ल जाना चाहता हूँ
पर कहीं न कहीं हाथ हिल जाता है
रेखा टेढी हो जाती है
जहाँ पर हाथ हिल जाने स
रेखा टेढी हो जाती है
पेंसिल की नोक फिर वहीं रखता हूँ
कुछ दूर तक सीधी रेखा खिचती है जरूर
लेकिन फिर वही हाथ हिल जाने
और रेखा टेढी हो जाने की कुढन से
मन खिन्न हो उठता है

टेढी मेढी रखाआ वाल कागज को ता
फाडकर फेंक देता हूँ
पर टेढी मेढी रेखाआ वाली जिन्दगी को
क्या करूँ ?

1993

अन्धी लडकी

अन्धी लड़की बडी करतबी है
सबसे पहले उठ जाती है
हाथ मुहँ धोकर वह चूल्हा लीपने चलती है
चूल्हे मे काला बिच्छू होता है
अन्धी लडकी को क्या पता
कि वहॉ बिच्छू है
काले बिच्छू को इससे क्या लेना देना
कि लडकी अन्धी है
वह करारा डक मार देता है
अन्धी लडकी घिघिया उठती है

एक ओर से मॉ दौडती है प्याज लेकर
तो एक ओर से छोटा भाई टार्च लेकर
कल से चूल्हे के पास न जाना
मॉ समझाती है प्याज रगडते हुए
अन्धी लडकी तो बिलखती ही जाती है
जहर चढता जाता है

झाड फूँक करने जब्बर नाऊ आ जाते है
सात चक्र बनाते और मिटाते हैं
पूछते हैं जहर उतरा
अन्धी लडकी की ऑखो मे देर रात
नींद उतर आती है
मॉ होती है निश्चिन्त

चॉद ऑगन के ठीक ऊपर चढ आया है
कल से अन्धी लडकी ईंधन लाने का जिम्मा लेगी
कल से बिच्छू ईंधन वाली जगह पर ही डेरा डालेगा
अन्धी लडकी को नहीं होगी इसकी खबर।

1994

मेरी क्यारी

पानी तो मेरी भी क्यारी मे बरसा
पर मेरी मेड कमजोर थी
अब मैं बादल को क्या मुँह दिखाऊँगा
पानी तो अब भी बरस रहा है
बादल तो अब भी छाये हुए हैं

इस बरसात मे जब किसी को
अपनी कटी उँगली दिखाने जाता हूँ
तो उसका पूरा पजा ही गायब पाता हूँ

ताख पर रख अपनी हँसी खुशी
उन समारोहो से जुड जाता हूँ
जिनकी टाँग हाल ही मे
घुटने के नीचे से काट दी गयी है

आकुल मन घर लौटता हूँ
उस पृष्ठ की तरह
जिसकी इबारत पर गाढी स्याही
गिर कर सूख गयी है
जिसे धोकर पढना भी
उतना ही मुश्किल है जितना खुरच कर।

1994

हवा

कितनी थम–थम कर
बहने लगी है यह हवा अनाहूत
किस तपोभूमि से कितने कदम चली है यह हवा
शेष है इसे कितनी दूर जाना
इसे क्या मालूम !
किसे कैसी लगेगी यह हवा
किस दरवाजे को यह धाड से खोल देगी
किसका पट एकबारगी भेड देगी
जी करता है मैं भी इसके साथ हो लूँ
कुछ दूर तक
देखो बहती जा रही है एक रागिनी सी अविराम
यह हवा।

1980

धूप कहाँ मरती है

आज अपनी खुशी क्यो न फूट पडे
जो इतनी कडी धूप मे
छाँह की तरह उग आये हो तुम
तुम नहीं होते तो मेरी आँखो का आलोक
काम नहीं करता
जिस चीज पर नजर पडती है
वही करुणा से आर्द्र कर जाती है
मैं उस नस की तरह निस्पन्द होता हूँ
जिसमे दौडता रक्त
उसी के भीतर जम गया हो

परिवेश मे समायी घुटन
मेरी साँसो मे उतर आती है
हर साँस के साथ आती जाती हैं
तुम्हारी साँसे

अपनी अँधेरी सीलनभरी कोठरी मे भी
मैं तुम्हारी यादो की ऊष्मा और विचारो का प्रवाह
अनुभव करता रहता हूँ

सूरज के होते हुए धूप कहाँ मरती है
सडक पर कोई भी चले
नियति पर किसी की उँगली उठे
मेरा मन तो सुरजमुखी सा तुम्हे ही निहारता है
तुम्हारी थपकी ही इसके डण्ठलो की उम्र है
तुम्हारा प्यार ही इस पर
ओस सा उतराया है
तुम्हारी खामोशी के कुहरे मे भी
इसने चहकते महकते और सँवरते हुए
अपना अच्छा दिन बिताया है।

1982

भागदौड से मुक्त होकर

दिनभर की भागदौड से मुक्त होकर
रात्रिकालीन मौन के हवाले हो गया हूँ
हाल ही मे गॉव गया था
जहॉं जिन्दगी उस मैदान की तरह है
जिसमे घास उगने की उम्मीद में
जगह जगह गाये बैठी हुई हैं
कई बुजुर्गों की कमर कुछ झुक गयी है
परदेश से आये अधेडो की देह थोडी झटक गयी है
रोगी औरते और बेरोजगार युवक
विला नागा रोज सुबह-शाम ढहते हुए मन्दिर के
शिवलिंग को एक लोटा जल चढा जाते हैं
कुछ आवारा लडके बिना सूचना के
घर से भाग गये हैं
दो और सँडसा-कमण्डलधारी खेती करने लगे हैं
मेले से खरीदे बछडो को 'कान्ह' आ गयी है
कुछ और हाथ पीले हुए हैं
बदचलनी के कई और किस्से गूँजे हैं
कुछ और डॉड मेड के झगडे जीवित हुए हैं
नवासे के फेर मे हुई हत्या के मुकदमे ने
जोर पकड लिया है

लोगो ने गृहस्थी का जजाल इतना फैला लिया है
कि उन्हे दूर ही से देखकर
मिलने का सुख मैंने पा लिया है

अब शहर लौट आया हूँ
यहाँ आदमी और आदमी के बीच बढती दूरी मे
कुछ खाली बैठे लोग नाचते गाते हुए
हरिकीर्तन मे मग्न हैं
और सडक के जाम मे फँसे लोगो के चेहरो पर
उगी तनाव की फसल पक गयी है
भजनीक रियाज पूरा करके चरणामृत मे बुत हैं
नौकरी पेशा लोग अखबारो मे चीजो के दाम मे
गिरावट का समाचार ढूँढते ढूँढते सो गये हैं
ठेलेवाले अपना बचा खुचा माल
गरजमद ग्राहको के गले मढकर
दुकान बढाने की हडबडी मे हैं
सडक के दोनो ओर धडाधड शटर गिर रहे हैं
और हर कोई थका हुआ है

न मुझे गाँव ने दुतकारा न शहर ने खदेडा
फिर भी मैं बहुत तेजी से
अपने कमरे की ओर लौट रहा हूँ
लगता है मेरी सारी चिन्ताओ का
कोई समाधान वहीं छूट गया है।

1982

चरवाहे

जेठ की खडी दापहर मे धीर धीरे चलते हुए
पानी पीने आ जाते हैं मेरे घर के सामने
प्यास से व्याकुल चरवाहे
अपने दुख दर्दो की अस्त व्यस्त गठरी सँभाले हुए
कुएँ पर उन्हे रस्सी बाल्टी मिलने का
भरोसा जो होता है

मेरा गॉव चाह जिस आर ताकता है
सामने कोई न कोई गॉव ही दिखाई देता है
जहॉ दिखाई दे जाते है जानवरो के झुण्ड के झुण्ड
और मारकीन के अँगाछे सिर पर डाले
हाथ मे लाठी लिए धूल धूसरित चरवाहे

गाये दोब दाबकर ये कहीं बठ जाते हैं
कभी बबूल का लासा छुडाने लगते हैं
कभी मोर या सियार को घेरने दौडते हैं
हर पेड इनका ठीहा है हर डाल इनका झूला
गाये जब गोमती की ओर भागने लगे
समझिए इनकी दुपहरिया हो गयी
गाये बरगद या पीपल की छॉह तले जुडाती हैं
और चरवाहे अपनी मडई मे पड जाते हैं

सरपत बेर और पलाश की झाडियो को
झकझोरती रहती है पछुआ हवा
सिर से गमछा हटाते ही मुँह झुलस जाता है
ऊसर बजर कुश कॉटो के बीच
ढोरो के पीछे पीछे चलते ये चरवाहे
गोमती के मटमैले पानी मे नहाकर
अपनी मटमैली ॲगोछी सिर पर डाले
जलते बालू से होकर रोज आत जाते हैं
गोमती के किनारे जगह जगह उगे
पीपल पाकड गूलर बडहर जामुन आम बबूल आदि
वृक्षो की पत्तियॉ छिनगाते
अपनी मैनी हडहिया सॅवरी गोडहिया जैसे
नामो वाली कण्डही गायो को
दोबते दाबते ये चरवाहे
इस जिन्दगी की सारी जलन सारी तपन
और सारी शुष्कता को मन मारकर
किसी कडवी दवा की तरह एक घूँट मे पी जाते हैं

डूबते सूरज के साथ जब ये घर का रास्ता पकडते हैं
इनके गले से फूटती लोकगीत की धुन पर
वन के पात झरते है
गाये खडी हो जाती है।

1986

क्या पता

यह जो मेरे विचारो की मसे भींग रही हैं
क्या पता इनका भी कभी कोई सस्कार हो
कुश की मेखला बने कोई मडप तने

यह जो मेरी जिन्दगी राग विहाग गा रही है
क्या पता इसका भी कोई मेघ मल्लार हो
काली-काली घटाये हों झमाझम बरसात हो

यह जो मैं जेठ की धरती की तरह डह रहा हूँ
क्या पता इसका भी कोई सावन हो भादो हो
नाचते मोर हो हर्षित किसान हो

यह जो मैं गूँगे इतिहास और बहरे वर्तमान
के बीच फैले अँधेरे म फँस गया हूँ
क्या पता कहाँ से किरणो की वर्षा हो धारासार
और सामने की राहो पर घटिया बजने लगें।

1992

शाम

जगल मे घुसी शाम
मुझे गहरे मे टटोलती है
अपने बारे मे मुझसे राय माँगती है
मेरे पास शाम पर कोई कविता नहीं है
जबकि पूरी पृथ्वी पर शाम बिछी है।

1981

घर का रास्ता

सडक से निकलकर बीच बीच मे
बेच दिये गये प्लाटा म अॅटककर
कहीं गुम हो गया है
मेरे घर तक पहुँचने का रास्ता

रास्ता जो कालोनी के नक्शे मे तो है
पर मेरे घर के आसपास कहीं नजर नहीं आता
जबकि हर काइ जानना चाहता है
मेरे घर तक पहुँचने का रास्ता

रास्ता, जिसे मेरे जैसे
अनेक घरो के सामने से गुजरना चाहिए
उनमे रह रहे डाक्टरो को मरीजो तक
वकीलो को कचहरी तक
शिक्षका और छात्रो को कालेज तक
ड्राइवरो को उनके वाहनो तक
औरतो को दुकानो तक और छोटे बच्चो को
उनकी गेद तक ले जाना चाहिए

रास्ता, जो सुरसा के मुहँ मे समा गये हनुमान् की तरह
समुद्र मे बडवाग्नि की तरह
त्रिवेणी मे अदृश्य सरस्वती की तरह है जरूर
उसे ले आये थे कालोनी के कर्णधार
भगीरथ प्रयास से
पर वह गुम है फिलहाल
शिव की जटाओ मे गगा की तरह

माघ पूस की गलन हो चाहे काली अँधेरी रात
मुझे घर से बाहर जाना ही होता है
कभी किसी ओर से कभी किसी ओर से
अन्तरिक्ष मे भटकते उल्का पिण्ड की तरह
रास्ते को लेकर इतनी अनिश्चितता
कि न पहुँचे कभी बिजली का बिल न गैस का सिलिण्डर
भटक जाय पुलिस वाला और पोस्टमैन भी
रोज ब रोज बनते जा रहे हैं मकान
पर किसी को नहीं सूझता कोई रास्ता आने जाने के लिए
और गुजरते हैं लोग निहायत गन्दे सड कीचड से भरे
किसी खाली प्लाट के बीच से
उनके पॉव सधे होते हैं
और वहीं पडते हैं जहॉ पिछले दिनो
आते जाते पडते रहे हैं

कभी कभार दिखायी पड जाता है कालोनाइजर
आवासीय भूखण्डो का आदिम अवधूत
वह बायीं ओर छींकने वाले आदमी
की तरह खिसियाता है
पर खुश होते हैं लोग कि अब रास्ता निकलेगा
शीघ्र ही नगी ऑखो से रास्ता दिखायी देगा
हर्षित होते हैं उसको घेर कर खडे लोग
अचानक वह कक्षा से भागे लडके सा गुमसुम
एक ओर चल देता है
धूलि कणो की तरह बिखर जाते हैं लोग
रास्ते के मसले को जहॉ का तहाँ अधमरा छोडकर।

1990

सदी की पोर-पोर में

अब हमारे पाँव उन घरो की ड्योढियाँ
लाँघने से कतई मुकरने लगे हैं
जिनकी गन्दी और सीलनभरी कोठरियो मे
हमारे बचपन का अर्थ खो गया है
जहाँ अश्लील किताबो की जिल्दबन्दी करते
फिल्मो के कामुक और उत्तेजक पोस्टर लपेटते
और दिन रात तबक कूटते हाथो ने
कलम पकडना सीख लिया है

खलिहान मे खाट डालकर किस्से मे मशगूल
हमारी चौकस आँखे
भूसा अनाज के बचाव की चिन्ता मे
सारी रात खुली रहती हैं
हमारे ढोर सूँघकर छोड देते हैं घास
उन चरागाहो की जिनपर कब्जे को लेकर
कई हत्याये हो चुकी हैं

इस दुनिया को गुलदस्ता बनाने वाले हमारे हाथ
हथकडी से लेकर दस्ताने तक की बुनावट पर
अपनी छाप अकित कर चुके हैं
पर नेस्तनाबूद कर दिया जाता है
झुग्गी झोपडी मे गुजर बसर करती
हमारी बस्तियो को जड समेत
और निचोड ली जाती है सारी खुशी
हमारे पुनर्वास की

ऐसा होता आया है
देश को सुनहरे भविष्य के चौराहे पर
टाँगन के नाम पर
हमारे पसीने की गन्ध मिन गयी है
इस सदी की पोर पोर मे
पर हमारे हाथ करते हैं जितना ही काम
और हमारे पॉव तय करते हैं जितनी ही दूरी
उतनी ही सूजती जाती हैं
अकडी नसे हमारे भविष्य की।

1979

कौन समझाये उन्हें

गगा जल हाथ मे लेकर कुछ कहना
अगर आज भी शपथ है
तो मैं उसे हाथ मे लेकर कहता हूँ
कि दोस्त मैंने भी बनाये हैं
बिना यह जाँचे कि
उनका नाम किस अक्षर से शुरू होता है

कुछ किताबे मैं भी पढ गया हूँ
बिना यह गौर किये कि
उनके लेखकों का नाम ज्यादा लम्बा है
या उनका
जबकि कुछ लोगो का कहना है
कि दोस्त बनाना अकर्मक क्रिया की कोशिकाओ मे
उसका 'जीन' ढूढने जैसा व्यर्थ प्रयास है
और किताबे पढना
अपनी ही पीठ पर रेगती चींटी को
न मार पाने की खीझ

वे अपने बिल मे पडे पडे
इस निर्णय पर पहुँचना चाहते है
कि लोग अपने बिल से
कब और कितनी देर के लिए
बाहर निकलते है
वे सज्ञा के कान मे कहते हैं कि
उसे सर्वनाम से ज्यादा खतरा क्रिया से है
और क्रिया को इस बात पर
ध्यान देने के लिए आगाह करते हैं

कि आजकल विशेषण बदचलन हो गया है
और उसके चलते भाषा का
अधिकाश कारोबार नष्ट हो गया है

वे अपनी कमीज के लिए नये कालर
और कालर के लिए नयी गर्दन की तलाश मे
अक्सर घूमने निकल जाते है
वे दिन मे रात पर बहस करते है
और रातभर दिन व्यर्थ गँवा देने पर पश्चात्ताप ।

आखिर उन्हे कौन समझाये
कि इस तरह एक मुल्क और उसकी भाषा का
भला हरगिज नहीं हो सकता।

1994

अलाव

अब लोग नहीं बैठते हैं शाम को
अपने पडोसी की खाट पर
पूछने और कहने पूरे दिन का हालचाल
घूर रहे हैं लोग अपनी आँच गँवा कर
सकीर्ण निजता मे सिमटे हुए
पाल रखी है सबने बिस्तर छोडने के लिए
अलग अलग मुर्गे की बाँग
किसी के हाथ नहीं लगती
बुझी राख के नीचे दबी एक भी चिनगारी
आखिर कितनी दूर है वह भरोसेमन्द अलाव
जहाँ सिक सकते हैं हमारे ठिठुरते हाथ

युग की आहत आँच और बुझी रोशनी
का कौर पाकर
मैं किसे सुनाऊँगा तो वह मान लगा
कि मेरे मुडेरे की धूप
मेरे आँगन की हरियाली चर गयी
गाँव घर खेत और सिवान को
चार बाते सुना गयी
धूप जिसकी देखभाल मे
सारा जीवन काटने की चाहतो ने
कब से अन्न जल ग्रहण नहीं किया है

में नीम के पेड के नीचे जलते
उस अलाव की तलाश मे भटकता रहता हूँ
जिसकी स्नेहभरी थपकियो ने मुझे
दूसरो के दु ख मे दौड पडने का गुर सिखाया है
जिसके बिना मैं अपनी जडो से कट जाता हूँ
अपनी सारी पत्तियॉं एक साथ सूखते देख कर
भारी भरकम पेड सा अरराता हूँ।

1980

हमारी यात्राएँ

जिन्दगी ने अपने अन्तहीन
उतार चढाव से मुक्त होकर
जब तब अपनी सतरगी चूनर से
अपने को सजाया है
लेकिन उसकी ओट मे ही छिपा रहता है
घुप्प अँधेरी गुफा सा भविष्य
टूटती साँसो सा वर्तमान
और थकी बुझी यादो सा अतीत

एक ऐसी दुनिया यहाँ बिखरी पडी है
जहाँ रोती हुई आवाजो की गूँज
हमे इस हद तक काठ बना जाती है
कि हम एक पाँव पर खडे होकर
दूसरे पाँव की खाल उतार ले

उफ ! कहीं बुझ न जाये वह दिया भी
जो खामोशी की निचली सतह पर
टिमटिमा रहा है
कैसे हम यहाँ आ पँहुचे हैं
जहाँ हवा का झोंका भी
साँस रोककर गुजरता है
और तिनके की भी तलाशी ली जाती है

हमारे वक्त की पूरी देह यो झुलस गयी है
कि पेड पौधे घर गाँव गली सब
उच्चाटन के शिकार हैं
कुहरे की परतो से निकलती है

अन्यमनस्क धूप
हमारे परिवेश का पजर ही
ऐसा ढीला हो गया है कि कहीं पर
एक भी जोड मुकम्मल नहीं बचा है

यहाँ अपनी फीकी यात्राओं मे
रग भरने के लिए
हम हर पडाव पर नये नये तरीके तलाशते हैं
लेकिन हमारी सारी दौड धूप
इस कदर बेमानी हो गयी है
कि हम जहाँ भी जूता खोलते हैं
वही से जगल शुरू होता है।

1979

तलाश

धूल और राख बिछी राह से गुजरते हुए
मैं किसी ऐसी किताब की तलाश मे था
जिसका पहला पृष्ठ पढते पढते
ऑख मे ऑसू आ जाय
जो किताब खत्म होने के बाद भी
ऑख मे बसा रहे

किताब ऐसी हो कि मुझे लेकर
अनायास इधर उधर न जाय
भले ही मेरे साथ कडी धूप मे
किसी पेड के नीचे बिलम जाय
और पानी आने पर दौडकर
किसी छान छप्पर के नीचे नवा जाय
इनकी सुनी कभी उनसे कह जाय
या फिर उनकी सुनी खुद ही पी जाय
लेकिन खत्म होने तक मेरे पास रह जाय

वह मुझे लिए दिए कचहरी के हाते मे
जादू का खेल देखती
भीड म खडी हो जाय
हाल ही मे बनी पुलिया को
कभी इस ओर कभी उस ओर तोडकर ढलवाते देख
ठेकेदार को कुछ भला बुरा कह जाय
उसके शब्द शब्द मे
सौ सौ सूरज की गर्मी हो

हर पृष्ठ मे हजारो पुस्तको की आँच हो
मैं उसमे ऐसे डूबूँ
जैसे आग का गोला
आग मे डाल दिया गया हो
और बाहर ऐसे निकलूँ
जैसे भट्ठे से पकी हुई ईट।

1990

अभी तो मैंने

अभी तो मैंने कोई शिकार भी नहीं किया
कि दिन ढलन को आ गया है
और पछी अपने बसेरे की ओर चल पडे हैं

अभी तो मैंने प्रत्यचा भी नहीं चढायी
न तूणीर तक मेरा हाथ पहुँचा है
अभी मैंने न धनुष बाण माथे से लगाया
और न शिकार पर दृष्टि ही गडायी है
कि दिन ढलने को आ गया है
और पछी अपने बसेरे की ओर चल पडे हैं

मेरे शिविर का तम्बू भी फट चला है
खूँटे भी उखडने लगे है
ऑधी सिर उठाये हुए है
आज मुझे रस्सी बॅटनी थी
शिविर से बहुत हटकर पानी का सोता है
मेरे थके–मॉदे साथी भूख प्यास से बेहाल होगे
मै उन्हे हताश हरगिज न होने दूँगा
अभी तो मैं इन्हीं विचारो की कडी ऑच मे
झुलस रहा था
कि दिन ढलने को आ गया है
और पछी अपने बसेरे की ओर चल पडे हैं

मैं यहॉ थका मॉदा बेहाल खडा हूँ
पागल दिशाएँ मेरे आसपास हैरान बैठी हैं
कुछ तो हाथ नहीं लगा
जीवन को न शब्द मिला न शब्द को अर्थ
भावो को न छन्द मिला न छन्द को आवृत्ति

सूखी बजर और पथरीली यात्रा मे शामिल
छूट गये सगी साथी बिला गयी घर गृहस्थी
अभी तो मैं जगल मे पैठने और निर्विघ्न लौटने
का मार्ग ही तजबीज रहा था
कि दिन ढलने को आ गया है
और पछी अपने बसेरे की ओर चल पडे हैं

मैंने यहॉ तक किसी से रास्ता नहीं पूछा
मैंने खुद राह ढूँढी और चलता रहा
भले ही मेरे सारे तीर बेकार चले जाये
लेकिन जगल मे मेरी मौजूदगी दर्ज होगी
अभी तो पसीने मे डूबी और जगह जगह देह से चिपकी
मेरी वर्दी कायदे से सूख भी नहीं पायी है
कि दिन ढलने को आ गया है
और पछी अपने बसेरे की ओर चल पडे हैं

मुझे घर से निकले काफी देर हो चुकी है
इस घने जगल का ओर छोर भी नहीं मालूम
आगे का रास्ता भी नहीं सूझता
आये दिन घर गॉव सुलगने की खबर आती है
तीर धनुष फककर मैं घर की राह लेता हूँ
ऐसे चलता हूँ जैसे समाधि से
जगा दिया गया हूँ
आज भी जहॉ का तहॉ खडा है मेरा गॉव
जो किसी ओर भी चार अगुल सरकने से
इनकार कर देता है
अभी तो मैंने अपने पचा लिये गये पेडो
और ढहा दी गयी डालियो की ओर निहारा भी नहीं
कि दिन ढलने को आ गया है
और पछी अपने बसेरे की ओर चल पडे हैं।

1995